$199\frac{1}{2}$ लाख कोटि कुल।

प्रश्न-283 तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के कितने भेद हैं?

उत्तर-283 तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के तीन भेद हैं- जलचर, थलचर और नभचर।

प्रश्न-284 जलचर जीव किसे कहते हैं?

उत्तर-284 जल में रहने वाले मछली, मगर आदि जीवों को जलचर जीव कहते हैं।

प्रश्न-285 थलचर जीव किसे कहते हैं?

उत्तर-285 पृथ्वी पर रहने वाले जीव जैसे गाय, भैंस, बकरी आदि ये थलचर जीव कहे जाते हैं।

प्रश्न-286 नभचर जीव किसे कहते हैं?

उत्तर-286 आकाश में उड़ने वाले पक्षी आदि को नभचर जीव कहते हैं।

(25) चौबीस ठाणा की कुछ विशेषताएँ

प्रश्न-287 संसार किसे कहते हैं?

उत्तर-287 जहाँ जीव का संसरण (जन्म-मरण) होता है, उसे संसार कहते हैं।

प्रश्न-288 संसार कब तक रहेगा?

उत्तर-288 संसारी प्राणी का एक समय के लिए भी गति नामकर्म का अभाव नहीं होता। अतः जब तक इसका उदय रहेगा, तब तक संसार रहेगा।

(26) गति मार्गणा की विशेषताएँ

प्रश्न-289 गुणस्थान व मार्गणा कितने दिनों के मेहमान हैं?

उत्तर-289

1. जीवों के जब तक गति नामकर्म का उदय रहेगा, तब तक मार्गणा एवं गुणस्थान रहेंगे। इसके पश्चात जीव मार्गणा एवं गुणस्थान से अतीत हो जाएँगे।
2. चारों गतियाँ औदायिकी हैं और क्षायिकी गति मोक्ष गति है।
3. देव गति और नरक गति में पहले से चार गुणस्थान तक हो सकते हैं।
4. मनुष्य गति में प्रथम गुणस्थान से अंतिम अयोग केवली गुणस्थान तक के 14 गुणस्थान होते हैं।
5. नारकी मरकर नारकी एवं देव नहीं होता है, देव मरकर देव एवं नारकी नहीं होता है, तिर्यंच एवं मनुष्य मरकर चारों गतियों में जन्म लेते हैं किंतु भोगभूमि के तिर्यंच एवं मनुष्य मरकर नियम से देव ही होते हैं।
6. आर्य मनुष्य, म्लेक्ष मनुष्य, विद्याधर मनुष्य, भोगभूमि मनुष्य, कर्मभूमि मनुष्य, अन्तर्द्वीपज मनुष्य, सम्मूर्च्छन मनुष्य, पर्याप्तक मनुष्य और निर्वृत्य पर्याप्तक मनुष्य आदि मनुष्य के भेद हैं।

(27) इन्द्रिय मार्गणा की विशेषताएँ

जिस नामकर्म के उदय से जीव की जो आदि अवस्था होती है, उसे इन्द्रिय कहते हैं।

1. एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव तिर्यंचों में ही पाए जाते हैं। शेष तिर्यंच, देव, नारकी और मनुष्य नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं।
2. एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीवों के नियम से मिथ्यात्व नामक प्रथम गुणस्थान होता है।
3. सयोग केवली और अयोग केवलियों के यद्यपि भावेन्द्रियाँ समूल नष्ट हो गई हैं, बाह्य इन्द्रियों का व्यापार बंद भी हो गया है तब भी छद्मस्थ अवस्था में भावेन्द्रिय के निमित्त से उत्पन्न हुई द्रव्येन्द्रियों के सद्भाव की अपेक्षा उन्हें पंचेन्द्रिय कहा गया है न कि ज्ञानावरण के क्षयोपशम रूप

भावेन्द्रियों की अपेक्षा से। यदि भावेन्द्रियों की विवक्षा होती तो ज्ञानावरण का सद्भाव होने से सर्वज्ञता ही नहीं हो सकती थी।

4. संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मिथ्यात्व गुणस्थान से चौदहवें अयोग केवली गुणस्थान तक के चौदह गुणस्थान होते हैं।

केवली भगवान के पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म के उदय होने से भी उन्हें पंचेन्द्रिय कहते हैं।

(28) काय मार्गणा की विशेषताएँ

1. पाँच स्थावर : पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पति कायिक जीव मिथ्यादृष्टि नामक प्रथम गुणस्थान में ही होते हैं।
2. दो इन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के सभी त्रस जीव प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान से अयोग केवली गुणस्थान तक होते हैं।

(29) आहारक काययोग की विशेषताएँ

1. अपने क्षेत्र में केवली भगवान के विरह, कदाचित ऋद्धि का सद्भाव जानने के लिए संयम के परिपालन के लिए और कदाचित सूक्ष्म पदार्थों का संदेह अर्थात् संशय दूर करने के लिए छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज आहारक शरीर की रचना करते हैं उसके द्वारा केवली भगवान के पास जाकर सूक्ष्म पदार्थों को आहारण कर लौट करके मूल शरीर में समाहित होता है उस शरीर को आहारक शरीर कहते है।
2. आहारक शरीर एक हाथ ऊँचा,हंस के समान धवल वर्ण वाला, सर्वांग सुन्दर व समचतुरस्र संस्थान से युक्त होता है।
3. वह उतमांग अर्थात् मस्तक से उत्पन्न होता है।
4. क्षणमात्र में कई लाख योजन गमन करने में समर्थ अप्रतिहत अर्थात् विष अग्नि एवं शस्त्रादि समस्त बाधाओं से रहित वज्र, शिला, स्तम्भ, जल

और पर्वतों में से गमन करने की क्षमता वाला होता है।

5. इस शरीर में निगोदिया जीव नहीं होते हैं।
6. आहारक शरीर की जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।
7. आहारक काययोग के साथ स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, मनःपर्यय ज्ञान, उपशम सम्यक्त्व और परिहार विशुद्धि संयम नहीं होते हैं।
8. केवली समुद्घात के उक्त आठ समयों में से दण्डद्विक अघोत पहले और सातवें दोनों समयों में औदारिक काययोग होता है। कपाटाद्विक अर्थात् द्वितीय तथा षष्ठ दो समयों में औदारिक मिश्र काययोग होता है। प्रतर लोक पूरण और प्रतर इन समयों में कार्मण काययोग रहता है और अष्टम अर्थात् शरीर प्रवेश के समय औदारिक काययोग रहता है।

(30) योग मार्गणा की विशेषताएँ

1. एक काल में एक जीव के युगपत एक ही योग होता है। दो या तीन नहीं हो सकते हैं।
2. तीनों योगों की प्रवृत्ति क्रम से ही होती है, युगपत नहीं। युगपत मानेंगे तो योग निरोध का प्रसंग आ जाएगा।
3. सामान्य से मनोयोग और विशेष रूप से सत्य मनोयोग और अनुभय मनोयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली पर्यंत तक होते हैं।
4. असत्य मनोयोग और उभय मनोयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टि से क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक पाए जाते हैं।
5. सामान्यसे और विशेष रूप से अनुभय वचनयोग द्विइन्द्रिय जीवों से लेकर सयोग केवली गुणस्थान तक होता है।
6. सत्य वचनयोग मिथ्यादृष्टि से सयोग केवली गुणस्थान तक होता है।
7. असत्य वचनयोग और उभय वचनयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टि से क्षीणकषाय पर्यंत तक होते हैं।
8. सामान्य से काय योग और विशेष की अपेक्षा औदारिक और औदारिक मिश्र काय एकेन्द्रिय से लेकर सयोग केवली गुणस्थान तक होते हैं।

9. वैक्रियिक मिश्र काय संज्ञी मिथ्यादृष्टि से असंयत सम्यग्दृष्टि तक होते हैं।
10. आहारक आहारक मिश्र काय योग एक प्रमत्त गुणस्थान में ही होते हैं।
11. कार्माण काय योग एकेन्द्रिय जीवों से सयोग केवली तक होता है।
12. केवली भगवान के मनोयोग नहीं होता है, द्रव्य मन का ही सद्भाव पाया जाता है। अतः वहाँ उपचार से मनोयोग कहा गया है।
13. इन्द्रिय ज्ञानियों के वचन मनोयोग पूर्वक देखा जाता है, केवली भगवान के नहीं।
14. उपचार से ही केवली भगान के उन दोनों प्रकार के वचनों की उत्पत्ति का विधान किया गया है।

(31) वेद मार्गणा की विशेषताएँ

1. वेद मार्गणा में भाव वेद ही इष्ट है न कि नाम कर्मोदय से उत्पन्न द्रव्यभेद।
2. देव और नारकियों की उत्कृष्ट आयु का बंध तीनों भाववेदों के साथ होता है किंतु द्रव्य स्त्रीवेद के साथ नारकियों की उत्कृष्ट आयु का बन्ध नहीं होता है क्योंकि पाँचवीं पृथ्वी तक सिंह और छठी पृथ्वी तक स्त्रियाँ जाती हैं।
3. 9वें गुणस्थान के आगे यद्यपि द्रव्य वेद का सद्भाव होता है किंतु भाववेद निकल जाने से अर्थात् भाववेद का अभाव होने से उन जीवों का अपगत वेद माना जाता है।
4. तीनों वेद की प्रवृत्ति क्रम से ही होती है। युगपत नहीं क्योंकि वेद पर्याय है।
5. योनी एवं लिंग आदि द्रव्य वेद, नामकर्म के उदय से होता है और 9 कषायों के उदय से जीवों के भाववेद होता है।
6. द्रव्य से पुरुषवेद होता हुआ कभी भाव से स्त्रीवेद और द्रव्य से स्त्रीवेद होता हुआ कभी भाव से पुरुषवेद भी होता है।
7. जन्म से लेकर मरण तक किसी एक वेद का उदय भी पाया जाता है।
8. सम्पूर्ण नारकियों के चारों ही गुणस्थानों में द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से एकमात्र नपुंसक वेद ही होता है न कि स्त्रीवेद होता है न ही पुरुष वेद।
9. कर्मभूमि के विकलेन्द्रिय और सम्मूर्च्छन तिर्यंच एवं मनुष्य केवल नपुंसक वेदी ही होते हैं।

10. कर्मभूमि के संज्ञी, असंज्ञी तिर्यंच एवं मनुष्य तीनों ही वेद वाले होते हैं।
11. नरकगति में नपुंसकवेदी 1-4 गुणस्थान वाले होते हैं। तिर्यंच तीनों वेदों वाले 1-4 गुणस्थान वाले होते हैं। मनुष्य तीनों वेदों से 1-9 गुणस्थान वाले होते हैं। इससे आगे वेद रहित होते हैं। देव स्त्री और पुरुष वेदों में एक से चार गुणस्थान वाले होते हैं।
12. तीनों वेदों के साथ दर्शन मोहनीय की क्षपणा संभव है।

(32) कषाय मार्गणा की विशेषताएँ

1. अनन्तानुबन्धी कषाय से जीव नरक गति में, अप्रत्याख्यान कषाय से जीव तिर्यंच गति में, प्रत्याख्यान कषाय से जीव मनुष्य गति में और संज्वलन कषाय से जीव देवगति में उत्पन्न होता है।
2. नरकगति में उत्पन्न जीवों के प्रथम समय में क्रोध का, मनुष्य गति में मान का, तिर्यंच गति में माया का और देवगति में लोभ के उदय का नियम होता है।
3. कषाय का उदय छः प्रकार का होता है- तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र मन्द, मन्दतर, मन्दतम। इन छः प्रकार के कषाय के उदय से क्रम से लेश्या भी छः प्रकार की हो जाती है।
4. कषायरहित जीव उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ, क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ, सयोगकेवली और अयोगकेवली इन चार गुणस्थानों में होते हैं।

(33) ज्ञान मार्गणा की विशेषताएँ

1. कुमति, कुश्रुत एवं कुअवधि ज्ञान मिथ्यात्व एवं सासादन गुणस्थान में होते हैं।
2. मतिज्ञान और श्रुतज्ञान चौथे गुणस्थान से बारहवें क्षीणकषाय तक के गुणस्थानों में होते हैं।
3. अवधिज्ञान चौथे से बारहवें गुणस्थानों में होता है।
4. मनःपर्यय ज्ञान छठवें से बारहवें तक के सात गुणस्थानों में होता है।

5. केवलज्ञान सयोग और अयोग केवली इन दो गुणस्थानों में होता है।
6. मिश्र ज्ञान तीसरे गुणस्थान में होता है।
7. एक को आदि लेकर एक साथ एक जीव में पहले के चार ज्ञान हो सकते हैं।
8. मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सदा एक साथ रहते हैं।
9. एक आत्मा में एक ज्ञान हो तो एक क्षायिक अर्थात् केवलज्ञान होता है।
10. एक जीव एक साथ पाँचों ज्ञान संभव नहीं है।
11. ज्ञान जीव का गुण है, पाँचों ज्ञान उस ज्ञानगुण की पर्यायें हैं।
12. सम्यग्ज्ञान की पाँच भावनाएँ हैं- (1) शास्त्र स्वाध्याय, (2) दूसरों से पूछना, (3) स्वरूप चिन्तन, (4) कण्ठस्थ करना, और (5) धर्मोपदेश देना।
13. जहाँ सम्यग्दर्शन है वहाँ सम्यग्ज्ञान होता ही है।
14. मिथ्यादृष्टि का शास्त्र ज्ञान भी नियम से मिथ्या और अकिंचित्कर ही होता है।
15. आत्मज्ञान के बिना सर्व आगम ज्ञान भी अकिंचित्कर है।
16. मनःपर्यय ज्ञान गर्भज कर्मभूमिज, पर्याप्तक, सम्यग्दृष्टि, संयत, वर्धमान चारित्र वाले ऋद्धि प्राप्त मुनियों में भी किन्हीं-किन्हीं को होता है, सबको नहीं।
17. मनःपर्यय ज्ञान की अप्रमत्त गुणस्थान में उत्पत्ति का नियम है बाद में प्रमत्त अवस्था में भी संभव है।

(34) संयम मार्गणा की विशेषताएँ

1. मिथ्यादृष्टि व्रती भी संयमी नहीं है। सम्यक्त्व से सहित जीव ही संयमी होता है।
2. इस दुस्सह दुःषमकाल में मनुष्यों के सम्यक्त्व सहित सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन आदि 28 मूलगुण, व्रत और तप आदि होते हैं।
3. संयमी मरकर नियम से देवगति में ही जन्म लेते हैं।

4. संयम तीनों भाव वेदी मनुष्यों में संभव है। उनमें भी कर्मभूमिज मनुष्यों में ही संभव है न कि भोगभूमिज में। कर्मभूमिज में भी आर्यखण्ड के मनुष्यों को ही संभव है न कि म्लेच्छ खण्ड के मनुष्यों को। म्लेच्छखण्ड से आए तथा उनकी संतान को भी संयम हो सकता है।
5. विद्याधर अपनी विद्याएँ त्यागकर संयमी हो सकते हैं, उनके त्याग के बिना संयम संभव नहीं होता।
6. परिहार विशुद्धि संयम के साथ मनःपर्यय ज्ञान, विक्रियाऋद्धि, आहारक, तैजस, समुद्घात एवं उपशम सम्यक्त्व नहीं होते हैं क्योंकि प्रवृत्ति करने वाला ही परिहार कर सकता है पर उपरिम गुणस्थानों में प्रवृत्ति का ही अभाव है। अतः वहाँ वह संयम नहीं होता है।

(35) दर्शन मार्गणा की विशेषताएँ

1. छद्मस्थों के पहले दर्शन फिर बाद में ज्ञान होता है।
2. केवली भगवान के दर्शन और ज्ञान युगपत होते हैं। सूर्य के प्रकाश व तप के समान क्योंकि उनके ज्ञान और दर्शन ये दोनों निरावरण हैं।
3. श्रुतज्ञान के पूर्व श्रुत दर्शन नहीं होता क्योंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक ही होता है।
4. विभंगावधि दर्शन नहीं होता है कथंचित अवधिदर्शन में उनका अन्तर्भाव हो जाता है।
5. चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं।
6. अचक्षुदर्शन उपयोग वाले जीव एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं।
7. अवधि दर्शन वाले जीव असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं।
8. केवलदर्शन के धारक जीव सयोग केवली, अयोग केवली और सिद्धावस्था में होते हैं।

(36) लेश्या मार्गणा की विशेषताएँ

1. लेश्या मार्गणा में भाव लेश्या ही इष्ट है।
2. कषाय और लेश्या दोनों भिन्न-भिन्न ही हैं, एक नहीं हो सकते हैं। क्योंकि केवल कषाय को लेश्या नहीं कहते हैं अपितु कषायानुबिद्ध योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। अतः कषायोदय के तीव्र-मंद आदि तरतमता से अनुरंजित लेश्या भिन्न ही है।
3. कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले जीव एकेन्द्रिय से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं।
4. पीत लेश्या और पद्म लेश्या वाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टि से अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक होते हैं।
5. शुक्ल लेश्या वाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टि से सयोगकेवली गुणस्थान तक होते हैं। 13वें के आगे के सभी जीव लेश्या रहित होते हैं।
6. शुभ लेश्या एवं अशुभ लेश्याओं के साथ भी सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्व दोनों पाए जाते हैं। जैसे नारकों में सम्यक्त्व और मिथ्यात्व तथा ग्रैवेयिक तक स्वर्गों में भी मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व दोनों है।

(37) भव्य मार्गणा की विशेषताएँ

1. भव्य जीव एकेन्द्रिय से लेकर अयोग केवली गुणस्थान तक होते हैं।
2. अभव्य जीव एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक होते हैं।
3. भव्य मार्गणा का कथन ज्ञान, दर्शन और चरित्त की शक्ति के सद्भाव और असद् भाव की अपेक्षा नहीं है, किंतु शक्ति की प्रकट होने की योग्यता और अयोग्यता की अपेक्षा है जैसे कि कनक पाषाण और अन्ध पाषाण।
4. कोई भव्य संख्यात, कोई असंख्यात और कोई अनन्त काल में सिद्ध होंगे। और कुछ ऐसे भी भव्य जीव है, जो अनन्त काल में भी सिद्ध नहीं होंगे।
5. भव्य मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है और सम्यग्दृष्टि भी। किंतु सम्यग्दृष्टि भव्य ही होंगे।
6. मिथ्यादृष्टि भव्य भी हो सकता है और अभव्य भी। किंतु अभव्य मिथ्यादृष्टि ही होंगे।

(38) सम्यकत्व मार्गणा की विशेषताएँ

1. सम्यक्त्व नियम से पंचेन्द्रिय, संज्ञी, पर्याप्तक एवं साकार उपयोग वालों को ही होता है।
2. सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यक्मिथ्यादृष्टि अथवा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं होता है।
3. अनादि मिथ्यादृष्टि ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।
4. उपशम श्रेणी के साथ द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अधिक से अधिक चार बार विराधित होता है।
5. उपशम सम्यग्दृष्टि जीव असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से उपशांत कषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान तक होते हैं।
6. वेदक सम्यग्दृष्टि जीव असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक होते हैं।
7. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान से अयोगकेवली गुणस्थान तक होते हैं।
8. मिथ्यात्व मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होता है।
9. सासादन सम्यक्त्व जीवमात्र सासादन गुणस्थान में होते हैं।
10. मिश्र सम्यक्त्व जीव मिश्र गुणस्थान में ही होते हैं।
11. मनुष्यों में जन्म लेने के 8 वर्ष बाद, देव-नारकियों में अंतमुहूर्त बाद, तिर्यंचों को दिवस पृथक्त्व के बाद प्रथमोपशम सम्यक्त्व होना संभव है, इससे पहले नहीं।
12. उपशम सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त बाद अवश्य छूट जाता है।
13. क्षायिक सम्यग्दर्शन अप्रतिघाती है।
14. औपशमिक वेदक सम्यक्त्व एवं अनन्तानुबंधी की विसंयोजनापल्य के असंख्यातवें भाग बार विराधित हो सकते हैं। इससे आगे नियम से मुक्त होता है।
15. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जघन्य से तीन भव उत्कृष्ट से 4 भवों में मुक्ति प्राप्त करता है।

16. वेदक सम्यक्त्व अनादि मिथ्यादृष्टि को सीधा प्राप्त नहीं होता है।
17. चल, मल, अगाढ़ आदि सहित श्रद्धान के साथ अर्थात् वेदक सम्यक्त्व के साथ क्षपक अथवा उपशम श्रेणी चढ़ना संभव नहीं है। अतः वेदक सम्यक्त्व सातवें आदि ऊपर के गुणस्थानों में नहीं होता है।
18. तीर्थंकर आदि के सद्भाव युक्त क्षेत्र, काल में ही मनुष्य दर्शन मोहनीय कर्म की क्षपणा का प्रतिष्ठापना कर सकता है। अन्यत्र नहीं। किंतु निष्ठापना चारों गतियों में संभव है।
19. जो वीतराग देवशास्त्र-गुरु को छोड़कर ख्याति, लाभ, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री, राज्यादि सम्पदा प्राप्त करने के लिए रागी-द्वेषी, आर्त-रौद्र रूप परिणाम वाले क्षेत्रपाल, चण्डिका, पद्मावती, आदि देवों की आराधना करता है वह देवमूढ़ता ही है।

(39) संज्ञी मार्गणा की विशेषताएँ

1. पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी तथा असंज्ञी दोनों होते हैं। ऐसे संज्ञी तथा असंज्ञी ये दोनों पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही होते हैं।
2. नारकी, देव और मनुष्य नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं।
3. पंचेन्द्रिय से भिन्न अन्य स्थावर काय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीव मन रहित असंज्ञी ही होते हैं।
4. असंज्ञी जीवों में नियम से एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है।
5. आवरण कर्म से रहित उनके मन के आलम्बन से बाह्य पदार्थों का ग्रहण नहीं पाया जाता है इसलिए उन्हें संज्ञी नहीं कह सकते हैं।
6. केवली भगवान ने समस्त पदार्थों का साक्षात कर लिया है, इसलिए उन्हें असंज्ञी कहने में विरोध आता है। अतः उन्हें असंज्ञी नहीं कह सकते हैं।

(40) आहारक मार्गणा की विशेषताएँ

1. विग्रहगति को प्राप्त हुए चारों गति के जीव, प्रतर व लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त अयोगकेवली व संयोग केवली तथा सिद्ध भगवान ये सब

अनाहारक होते हैं। शेष सभी जीव आहारक होते हैं।
2. विग्रह गति में एक, दो या तीन समय के लिए जीव अनाहारक होता है।
3. आहारक मार्गणा में 1-13 गुणस्थान होते हैं।
4. अनाहारक मार्गणा में पहला, दूसरा, चौथा, तेरहवाँ ये चार गुणस्थान होते हैं।
5. केवली समुद्घात का काल 8 समय है- दण्ड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण, पुनः प्रतर, कपाट दण्ड और स्वशरीर प्रवेश।
6. केवली समुद्घात को प्राप्त केवली भगवान प्रतर, लोकपूरण और पुनः प्रतर इन तीनों समयों में अनाहारक और अन्य सभी समयों में आहारक होते हैं।

(41) गुणस्थान की विशेषताएँ

1. एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक तथा लब्ध्य पर्याप्तक जीव मिथ्यात्वी ही होते हैं।
2. सभी बहिरात्मा हैं।
3. मिथ्यादृष्टि मनुष्य गर्भ से 8 वर्ष अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यात्व नष्ट करने में असमर्थ होते हैं।
4. जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट काल अनादि अनन्त हैं।

(42) सासादन गुणस्थान की विशेषताएँ

1. दूसरे गुणस्थान वाला नियम से प्रथम गुणस्थान में पहुँचता है।
2. इस गुणस्थान में मरण कर जीव नरक में नहीं जाता है।
3. तीर्थंकर व आहारक द्विक की सत्ता वाला जीव इस गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है।
4. इस गुणस्थान का जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट काल छह आवली है।
5. सासादन गुणस्थान में मिथ्यात्व का उदय नहीं परन्तु अनन्तानुबंध कषाय का उदय है।

6. सासादन गुणस्थानवर्ति जीवों की संख्या अधिक से अधिक पल्य के असंख्यात भाग प्रमाण तथा कम से कम एक भी रहती है और कभी ऐसा होता है कि एक भी नहीं होती है।
7. इस गुणस्थान वाला नियम से भव्य ही होता है।

(43) मिश्र गुणस्थान की विशेषताएँ

1. मिश्र गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होता है।
2. इस गुणस्थान में मरण नहीं होता है। अतः मारणान्तिक समुद्घात भी नहीं होता।
3. तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला इस गुणस्थान में नहीं आता।
4. सादि मिथ्यादृष्टि ही तीसरा गुणस्थान प्रात करता है।
5. अधिक से अधिक पल्य के असंख्यातवें भाग व कम से कम एक समय काल ऐसा हो सकता है जब इस लोक में एक भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न हो।
6. इस गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है।
7. सम्यग्मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यग्मिथ्यादृष्टि उभयदृष्टि तथा मिश्रदृष्टि ये सभी एकार्थवाची नाम हैं।
8. इस गुणस्थान वाला नियम से भव्य ही होता है।

(44) अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान की विशेषताएँ

1. तीर्थंकर प्रकृति का बंध चतुर्थ गुणस्थान से ही प्रारंभ होता है।
2. यहाँ से अन्तरात्मा संज्ञा प्राप्त होती है।
3. इस गुणस्थान में औपशमिक सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का काल 66 सागर तथा क्षायिक सम्यक्त्व का काल संसारी जीवों की अपेक्षा से दो पूर्व कोटि कुछ अधिक 33 सागर और मुक्त जीवों की अपेक्षा से सादि अनन्त है।
4. सम्यग्दर्शन होते ही जीव का ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है।
5. इस गुणस्थान में सर्वकाल ही जीव पाए जाते हैं किंतु एक जीव की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कम से कम अन्तर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक

सातिरेक 33 सागर तक रहता है।
6. इस गुणस्थान तक चारित्र नहीं होता है।

(45) देशविरत गुणस्थान की विशेषताएँ

1. इस गुणस्थान में त्रस अविरति की तो विरति है पर शेष की विरति नहीं है।
2. उपशम सम्यक्त्व के साथ इस गुणस्थान में उत्पन्न होने के लिए तीन करण आवश्यक है।
3. वेदक सम्यक्त्व के साथ इस गुणस्थान में उत्पन्न होने के लिए दो करण आवश्यक हैं।
4. यह गुणस्थान केवल मनुष्य और तिर्यंचों को ही होता है।
5. भोग भूमियाँ मनुष्य और तिर्यंचों के यह गुणस्थान नहीं होता है।
6. तिर्यंचों के यह गुणस्थान जन्म लेने के तीन अन्तर्मुहूर्त बाद हो सकता है।

(46) प्रमत्त संयत गुणस्थान की विशेषताएँ

1. छठवें गुणस्थान तक शुभोपयोग रहता है।
2. आहारक आदि ऋद्धियों का प्रयोग इसी गुणस्थान में होता है।
3. प्रमत्त संयत गुणस्थान में सर्वकाल साधु पाए जाते हैं।
4. इस गुणस्थानवर्ती जीवों का निवास ढाई द्वीप के अंदर ही है।
5. इस गुणस्थान का जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।
6. प्राप्ति की अपेक्षा पहले सातवाँ गुणस्थान होता है, फिर छठवाँ प्राप्त होता है।

(47) अपूर्वकरण गुणस्थान की विशेषताएँ

1. आठवें गुणस्थान से नीचे की ओर गमन के दो मार्ग हैं- आठवें से सातवें, मरण की अपेक्षा चौथे में तथा ऊपर की ओर गमन करें तो नवम गुणस्थान में पहुँचते हैं।
2. इस गुणस्थान में मरण कर जीव देव गति में ही जन्म लेता है। क्षपक श्रेणी में तो सर्वत्र मरण नहीं होता। उपशम श्रेणी में इस गुणस्थान के प्रथम भाग में भी मरण नहीं होता, किंतु द्वितीयादि भागों में मरण संभव है।

3. यह गुणस्थान दो प्रकार का होता है- (1) उपशम अपूर्वकरण और (2) क्षपक अपूर्वकरण।
4. इस गुणस्थान में छः विशेष कार्य होने लगते हैं-
   (1) प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धि
   (2) कर्मों की स्थिति खण्डन (स्थिति का घटना)
   (3) नवीन स्थिति बन्ध कम होना
   (4) अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग नष्ट होना
   (5) कर्म वर्गणाओं की असंख्यात गुणी निर्जरा
   (6) अनेक अशुभ प्रकृतियों का शुभ होना
   (7) गुण श्रेणी निर्जरा
   (8) गुण संक्रमण

(48) अनिवृत्तिकरण गुणस्थान की विशेषताएँ

1. उपशम श्रेणी वाले मुनि महाराज के नीचे की ओर गमन के दो मार्ग हैं। नवम से आठवें में तथा मरण की अपेक्षा चौथे में । ऊपर की ओर गमन के 11वें गुणस्थान में एक ही मार्ग है।
2. मरण की अपेक्षा जघन्य काल एक समय व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।
3. क्षपक श्रेणी में इस गुणस्थान के 9 भागों में प्रकृतियों के क्षय होने का क्रम इस प्रकार है :-
   पहले भाग में स्त्यानगृद्धि आदि तीन और नरक गत्यादि 13 ये 16 प्रकृतियों की सत्व व्युच्छित्ति होती है।
   दूसरे भाग में अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण इन 8 प्रकृतियों का क्षय।
   तीसरे भाग में नपुंसक वेद का क्षय, चौथे में स्त्रीवेद का क्षय, पाँचवें में हास्यादि षट् का क्षय, छठवें भाग में पुरुषवेद का क्षय, सातवें भाग में संज्वलन क्रोध का, आठवें भाग में संज्वलन मान का, नवम भाग में संज्वलन माया का क्षय होता है।

(49) सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान की विशेषताएँ

1. इस गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र से कुछ न्यून चारित्र पाया जाता है।
2. उपशम श्रेणी में 10वें गुणस्थान वाले जीव के नीचे की ओर दो मार्ग हैं- दशवें से नवम में, मरण की अपेक्षा चौथे में। ऊपर की गमन कर 11वें गुणस्थान में पहुँचते थे। क्षपक श्रेणी वाला 10वें गुणस्थान से सीधे 12वें गुणस्थान में जाता है।
3. इस गुणस्थान का मरण की अपेक्षा जघन्य काल का एक समय तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

(50) उपशांत मोह गुणस्थान की विशेषताएँ

1. जीव का उपशम काल समाप्त होते ही उसे नीचे 10वें गुणस्थान में गिरना पड़ता है। आगे 9, 8, 7, 6वें तक गिरना ही पड़ता है। आगे चढ़ भी सकता है गिर भी सकता है।
2. यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी पर चढ़े तो नीचे गिरकर चौथे गुणस्थान से नीचे नहीं गिर सकता।
3. इस गुणस्थान में बन्ध केवल साता वेदनीय का होता है।
4. इस गुणस्थान का मरण की अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

(51) क्षीण मोह गुणस्थान की विशेषताएँ

1. इस गुणस्थान में प्रवेश के समय तो पहला पृथक्त्व वितर्क विचार शुक्ल ध्यान होता है, पश्चात एकत्व वितर्क अविचार शुक्ल ध्यान अंत तक रहता है।
2. जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।
3. क्षीण मोह यह आदि दीपक है।

(52) संयोग केवली गुणस्थान की विशेषताएँ

1. तीर्थंकर केवली को छोड़कर इस गुणस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तीर्थंकर सयोगकेवली परमात्मा का जघन्य काल वर्ष पृथक्त्व अर्थात् 3 से लेकर 9 वर्ष के अंदर ही रहता है। उत्कृष्ट काल गर्भकाल सहित 8 वर्ष तथा 8 अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि है।
2. आगमन 12वें गुणस्थान से, गमन 14वें गुणस्थान में होता है।
3. सयोगकेवली परमात्मा कई प्रकार के होते हैं- तीर्थंकर सयोग केवली, मूक केवली, अन्तः कृत केवली, उपसर्ग केवली, सामान्य केवली, समुद्घात केवली।
4. सयोग शब्द अन्तदीपक है। केवली शब्द आदि दीपक है।
5. इस गुणस्थान में जीवों की संख्या 8,98,502 है।

(53) अयोग केवली गुणस्थान की विशेषताएँ

1. अयोग केवली का काल अ, इ, उ, ऋ, लृ इन 5 ह्रस्व स्वरों को बोलने में जितना समय लगता है, उतना ही है।
2. इसके उपान्त्य समय में 72 और अन्त समय में 13 और यदि तीर्थंकर नहीं है तो 12 प्रकृतियों का क्षय होता है।
3. इसके अन्तर ही जीव शरीर से मुक्त हो लोकाग्र में विराजमान हो जाता है।
4. इस गुणस्थान में जीवों की संख्या 598 है।

(54) छह पर्याप्तियों की विशेषताएँ

1. छहों पर्याप्तियाँ और अपर्याप्तियाँ संज्ञी जीवों के होती है।
2. मनःपर्याप्ति के बिना पाँचों ही पर्याप्तियाँ और पाँचों ही अपर्याप्तियाँ द्विइन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त होती है।
3. भाषा पर्याप्ति तथा मनःपर्याप्ति के बिना चारों ही पर्याप्तियाँ और अपर्याप्तियाँ एकेन्द्रिय जीवों के ही होते हैं।

4. छहों पर्याप्तियों का प्रारंभ युगपत होता है क्योंकि जन्म से लेकर ही इनका अस्तित्व पाया जाता है। किन्तु पूर्णता एक के बाद एक की क्रम से होती है।
5. सर्वप्रथम आहार पर्याप्ति, आहार को ग्रहण करने के प्रथम समय से एक अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होती है। इसी प्रकार एक अन्तर्मुहूर्त बाद शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छवास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मन पर्याप्ति क्रम से एक-एक अन्तर्मुहूर्त में होती है।
6. सभी जीव शरीर पर्याप्ति के निष्पन्न होने पर पर्याप्तक कहे जाते हैं।
7. कार्य कारण की अपेक्षा से पर्याप्ति एवं प्राणों में अंतर है।
8. सयोग केवली भगवान के भावेन्द्रिय तो हैं नहीं, किन्तु द्रव्येन्द्रियों की अपेक्षा से छह पर्याप्तियाँ कही गई हैं।

(55) प्राण प्ररूपणा की विशेषताएँ

1. पाँच स्थावरों के स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, उच्छवास-निश्वास और आयु ये 4 प्राण होते हैं।
2. इन 4 प्राणों में रसनेन्द्रिय और वचन बल ये दो मिला देने से दो इन्द्रिय जीव के 6 प्राण होते हैं।
3. इन छः प्राणों में घ्राणेन्द्रिय मिला देने पर तीन इन्द्रिय जीव के सात प्राण होते हैं।
4. इनमें चक्षुरिन्द्रिय मिला देने पर 4 इन्द्रिय जीव के 8 प्राण होते हैं।
5. इनमें कर्णेन्द्रिय मिला देने पर तिर्यंच असंज्ञी जीव के 9 प्राण होते हैं।
6. इनमें एक मनोबल मिला देने पर संज्ञी जीवों के 10 प्राण होते हैं।
7. सयोग केवली के चार प्राण होते हैं- वचन, श्वासोच्छवास, आयु और काय। उपचार से कभी इनके 7 प्राण कहे जाते हैं।
8. अयोगकेवली के केवल एकमात्र आयु प्राण ही होता है।
9. सयोग केवली के समुद्घात के समय अपर्याप्त अवस्था में कभी काय और आयु ये दो, तो कभी एकमात्र आयु प्राण होता है।

10. सयोग केवली समुद्घात के प्रथम समय में अर्थात् दण्ड अवस्था में काय, आयु और श्वासोच्छवास ये तीन प्राण होते हैं।
11. द्वितीय समय कपाट में काय और आयु ये दो प्राण होते हैं।
12. तृतीय समय अर्थात् प्रत्तर, चतुर्थ समय अर्थात् लोकपूरण, पंचम अर्थात् पुनः प्रत्तर इन तीनों समयों में सयोग केवली भगवान के एकमात्र आयु प्राण रहता है।
13. षष्ठ और सप्तम समय अर्थात् पुनः कपाट और दण्ड में काय, आयु और श्वासोच्छवास ये तीन प्राण होते हैं।
14. अष्टम अर्थात् शरीर प्रवेश के समय वचन, काय, आयु और श्वासोच्छवास ये चार प्राण होते हैं।

(56) संज्ञा प्ररूपणा की विशेषताएँ

1. चारों संज्ञाओं के स्व-स्व कर्म की उदीरणा होने पर वह-वह संज्ञा उत्पन्न होती है। इन कर्मों के उदय से नहीं।
2. भय आदि संज्ञाओं के कारणभूत कर्मों का उदय अप्रमत्तादि गुणस्थानों में संभव है। इसलिए उपचार से भय और मैथुन संज्ञाएँ स्वीकार की गई हैं।
3. मिथ्यात्व से प्रतमत्त गुणस्थान तक चारों संज्ञाएँ होती हैं।
4. प्रमत्त गुणस्थान में अहार संज्ञा का व्युच्छेद हो जाता है। अतः अपूर्वकरण पर्यन्त शेष तीन संज्ञाएँ होती हैं।
5. अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में भय और मैथनु दो संज्ञाएँ होती हैं।
6. सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में एकमात्र सूक्ष्म लोभ के कारण एकमात्र परिग्रह संज्ञा रह जाती है।
7. ऊपर के गुणस्थानों में कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता है। वहाँ संज्ञा नहीं होती है।
8. लोभ कषाय कारण है और परिग्रह संज्ञा उसका कार्य है। यह इन दोनों में अंतर है क्योंकि लोभ कषाय का उदय अलग है एवं उदीरणा अलग है।

संख्या	गुणस्थान	गति	ग	संज्ञा	उपयोग	ध्यान	आश्रव	जाति	कुल
(1)	मिथ्यात्व	च	)	4	2 दर्शन 3 कुज्ञान	8 ध्यान 4 आ. ध्यान	55 आश्रव आहारकद्विक बिना	84 लाख योनि	199 ॥ लाख कोटि
(2)	सासादन	तु			5 उपयोग	4 रौद्र ध्यान	50 आश्रव 5 मिथ्यात्व बिना	26 लाख 4 लाख देव	108॥ ला.को. 43॥ ला.पं.पशु
(3)	मिश्र	र्ग ति		सं	3 दर्शन 3 मिश्रज्ञान 6 उप.	9 ध्यान धर्मध्यान श्रुत	43 आश्रव 12 अविरति 21 कषाय 10 योग	4 लाख नारकी 4 लाख पं. पशु	25 लाख कोटि नारक
(4)	अविरत सम्यग्दृष्टि	जी व		ज्ञा	6 उप. 3 दर्शन	10 ध्यान आ. 4 रौद्र 4 धर्म 2	46 आश्रव 12 अविरति 21 कषाय 13 योग	14 लाख मनुष्य	26 ला. को. देव 14 ला. को. मनु.
(5)	देशविरत	मनुष्य प.पशु			3 सुज्ञान	11 ध्यान 4 आ. 4 रौद्र 3 धर्म	37 आश्रव 11 अविरति 17 कषाय 9 योग	18 लाख 4 लाख प.पशु 14 ला.म.	57॥ ला. को. 43॥ ला. पं.प. 14 ला. को.म.
(6)	प्रमत्त विरत	ए			7 उप. 3	7 ध्यान 3 आ. 4 धर्म.	24 आश्रव 13 कषाय 11 योग	14	14
(7)	अप्रमत्त संयत	क		आहारक विना	दर्शन	4 धर्म ध्यान	22 आश्रव 13 कषाय		
(8)	अपूर्वकरण	म		3 संज्ञा		1 पृथकत्व	9 योग	ला	ला
(9)	अनिवृत्ति करण	नु		मैथुन परिग्रह	4	वितर्क	16 आश्रव 7 कषाय 9 योग		ख
(10)	सूक्ष्म साम्पराय			1 संज्ञा परिग्रह	ज्ञा	शुक्ल	10 आश्रव 9 योग 1 कषाय	ख	को
(11)	उपशांत मोह	ष्य		X		ध्यान	9 आश्रव 9 योग	म	टि
(12)	क्षीण मोह			X	न	एकत्व वितर्क शु.	9 आश्रव 9 योग	नु	म
(13)	सयोगकेवली	ग	णि तन. स. यु.	X	2 उप. के.	सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती	7 आश्रव 7 योग	ष	नु
(14)	अयोग केवली	ति	णि यु	X	दर्शन केवल ज्ञान	व्युपरत क्रिया निवर्ति	X	य	ष्य